



दया धर्म की नींव, अभिमान पतन का मूल

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान. तुलसी दया न छोड़िए, जब तक घट में प्राण ॥



डॉ. मुकेश नायक

दया ही धर्म का सार

तुलसीदास का संदेश स्पष्ट है कि धर्म की शुरुआत केवल पूजा-पाठ, व्रत-उपवास या धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन से नहीं होती. धर्म का वास्तविक आधार दूसरों के प्रति करुणा, संवेदना और मानवीय दृष्टिकोण में निहित है. किसी व्यक्ति के पास अपार धन हो, वह धार्मिक अनुष्ठान करता हो और समाज में प्रतिष्ठित हो, लेकिन यदि उसके हृदय में गरीब, कमजोर अथवा पीड़ित व्यक्ति के लिए संवेदना नहीं है, तो उसके धर्म की वास्तविक भावना अधूरी रह जाती है.दया का अर्थ केवल आर्थिक सहायता करना नहीं है. भूखे को भोजन देना, दुखी व्यक्ति की बात धैर्यपूर्वक सुनना, किसी कमजोर व्यक्ति के साथ खड़ा होना, गलती करने वाले को सुधारने का अवसर देना और किसी भी जीव को

अनावश्यक कष्ट न पहुंचाना भी दया के ही रूप हैं.दया ही मनुष्य को दूसरे के दर्द को समझने की क्षमता देती है. जब हम दूसरों के दुख को महसूस करने लगते हैं, तभी मानवता का वास्तविक अर्थ सामने आता है.

अभिमान से सावधान

दोहा का दूसरा भाग ‘अभिमान’ से सावधान करता है. धन, ज्ञान, शक्ति, पद, सौंदर्य, उपलब्धि या प्रतिष्ठा का अत्यधिक गर्व धीरे-धीरे व्यक्ति के भीतर दूसरों से श्रेष्ठ होने की भावना पैदा कर सकता है. अभिमान मनुष्य को अपनी गलतियों को स्वीकार करने से रोकता है. उसे लगने लगता है कि वही सही है और दूसरों के विचारों या अनुभवों का कोई विशेष महत्व नहीं है. सफलता अपने आप में गलत नहीं है. धन अर्जित करना, जिम्मेदारी का बड़ा पद प्राप्त करना अथवा समाज में सम्मान हासिल करना भी गलत नहीं है. समस्या तब उत्पन्न होती है, जब उपलब्धियां व्यक्ति से विनम्रता छीन लेती हैं. वास्तविक सफलता व्यक्ति को अधिक विनम्र और जमीन से जुड़ा बनाती है. अपनी उपलब्धियों पर संतोष होना स्वाभाविक है, लेकिन



उसके आधार पर किसी दूसरे के सम्मान को कम आंकना उचित नहीं. ज्ञान किसी दूसरे व्यक्ति को छोटा नहीं बनाता. धन किसी गरीब को कमतर नहीं करता और किसी पद या अधिकार से सामान्य व्यक्ति

की गरिमा कम नहीं हो जाती.

दया को कभी न छोड़ें

तुलसी दया न छोड़िए—तुलसीदास का यह संदेश अत्यंत स्पष्ट है कि दया का त्याग कभी नहीं करना चाहिए.जीवन निरंतर परिवर्तनशील है. कभी हम मजबूत होते हैं और कभी हमें दूसरों के सहारे की आवश्यकता पड़ती है. परिस्थितियां कभी धनवान को जरूरतमंद बना सकती हैं, अधिकार रखने वाले को असहाय और सफल व्यक्ति को अर्निश्चितता के दौर में पहुंचा सकती हैं. इसलिए दया और संवेदना हमारी परिस्थितियों पर निर्भर नहीं होनी चाहिए. दुनिया कई बार कठोर दिखाई दे सकती है, लेकिन उसको कठोरता का जवाब अपनी मानवता खोकर देना समाधान नहीं है. यदि कोई हमारे साथ बुरा व्यवहार करता है, तो इसका अर्थ यह नहीं कि हम भी अपने मूल्यों का त्याग कर दें. कठिन परिस्थितियों में भी करुणा और अच्छाई को

अंततः धन, पद और प्रसिद्धि हमेशा साथ नहीं रहते. व्यक्ति के जाने के बाद उसकी पहचान उसके आचरण से होती है—किसी जरूरतमंद की की गई सहायता, किसी दुखी व्यक्ति को दी गई उम्मीद और बिना किसी स्वार्थ के दिखाई गई संवेदना से. तुलसीदास का संदेश आज भी उतना ही सरल और प्रभावशाली है धर्म की शुरुआत दया से होती है और नैतिक पतन की शुरुआत अभिमान से हो सकती है. जब तक शरीर में प्राण हैं, तब तक हमारे भीतर दया, विनम्रता और मानवता जीवित रहनी चाहिए.

बनाए रखना ही चरित्र का वास्तविक परीक्षा है.

आज के समय में संदेश की

प्रासंगिकता

तीव्र प्रतिस्पर्धा, सोशल मीडिया पर बढ़ती तुलना और उपलब्धियों के प्रदर्शन को संस्कृति के दौर में तुलसीदास का यह संदेश और भी प्रासंगिक हो जाता है.हमें स्वयं से पूछना चाहिए कि क्या हमारी सफलता के साथ विनम्रता भी बढ़ रही है? क्या हम किसी जरूरतमंद की सहायता के लिए रुकते हैं? क्या हम अपने से कमजोर व्यक्ति का सम्मान करते हैं? क्या हम अपनी गलतियों को स्वीकार कर सकते हैं? क्या हम दूसरे के दुख को समझने का प्रयास करते हैं? दया मनुष्य को मनुष्य से जोड़ती है, जबकि अभिमान दूरी पैदा करता है. दया सामाजिक संबंधों को मजबूत करती है और अहंकार उन्हें कमजोर करता है.

कहानी



महेन्द्र तिवारी

शहर की भागदौड़, ट्रैफिक के शोर और समय से आगे निकल जाने की हड़बड़ी से दूर, हमारा छोटा-सा कस्बा अपनी ही लय में सांस लेता था. वहां समय घड़ियों से नहीं, प्रकृति के संकेतों से चलता था. मूर्तों की बांग, मंदिर की पहली आरती, स्कूल की घंटी और शाम की आरती, यही हमारे दिन का कैलेंडर होते थे. सुबह की पहली धूप गलियों में उतरती, तो रात भर जमी धूल हवा में तेरते सुनहरे कणों में बदल जाती. ‘गो पांव भागते बच्चों के कदमों से उठती धूल बचपन की शरारतों पर मोहर लगा देती. आम के कुजों से छनकर आती हवा पत्तों की मर्मर के साथ कोई भूली-बिसरी लोरी घोल देती. उस दौर में वक़्त ठहर-सा जाता था. आधुनिकता का इकलौता झोंका दूरदर्शन के गिने-चुने कार्यक्रमों के जरिए कस्बे तक पहुंचता था.

इस बदलाव की शुरुआत रेडियो से हुई थी. ‘बिनाका गीतमाला’ में अमीन सयानी की जानी-पहचानी आवाज गुंजती, तो लगता जैसे पूरा देश एक साथ कान लगाए बैठा हो. गीत सिर्फ सुने नहीं जाते थे, जिए जाते थे. टीवी के आने से जादू आवाजों से निकलकर चेहरों तक पहुंच गया. अब हम सिर्फ गीत नहीं सुनते थे, सपने भी देखने लगे थे. हीरो की चमकती आंखें, हीरोइन की लहराती साड़ियां और डांस स्टेप्स हमारे छोटे-से ब्राइंडिंग रूम को बॉलीवुड के सेट में बदल देते थे.

हमारे मोहल्ले में चित्रहार सिर्फ एक कार्यक्रम नहीं, रस्म बन गया था. बुधवार की शाम सात बजते ही पगडंडियां सूती हो जातीं और हर आंख टीवी की ओर लग जाती. हमारे घर के एक कोने में रखा ब्लैक एंड व्हाइट बुश टीवी पूरे कस्बे की सामूहिक धड़कन का केंद्र था. उसका डांवा धिसा हुआ था, लेकिन माथे पर चमकता लोगो किसी शाही तमगो की तरह गर्व से टिका रहता. उसके सिर पर लगे दो

लंबे एंटेना वी-आकार में खड़े रहते, जैसे अंतरिक्ष से कोई अदृश्य संदेश पकड़ने की कोशिश कर रहे हों. कभी तस्वीर साफ दिखती, तो कभी स्क्रीन पर झींगुरों जैसी झिलमिलाहट छा जाती. स्क्रीन कांपते ही घर का सबसे छोटा बच्चा छत की ओर दौड़ पड़ता. ‘नीचे से आवाजें गुंजतीं, ‘जरा दाई तरफ घुमा. अरे नहीं, ज्यादा हो गया! वही रोक, वही! अब साफ है!’

एंटेना पर पन्नी लपेटना और उसे थपथपाना किसी तकनीकी अभियान से कम नहीं था. स्क्रीन की झिलमिलाहट थम जाती, तो लगता जैसे युद्ध जीत लिया हो. उसी छोटे-से पर्दे पर हमने पहली बार रामायण देखी थी. राम का वनवास और सीता की विदाई के दृश्य आते, तो मां की आंखें भीग जाती. बाबूजी अखबार एक ओर रखकर स्क्रीन निहारते रहते. महाभारत में शंखनाद होता, तो

रसोई में बर्तनों की आवाज तेज कर देतीं. दाल जल्दी पकती, रोटियां कम गोल बनतीं, लेकिन लक्ष्य साफ था, सात बजने से पहले सब काम निपट जाएं. बाबूजी चाय की दुकान से लौटते हुए बिजली के खंभों की ओर नजर डालते. घर में घुसते ही पूछते, ‘आज बत्ती रहेगी न?’ मां मुस्कुरा देतीं, मानो मन ही मन किस्मत से प्रार्थना कर रही हों.

धीरे-धीरे ब्रांडिंग रूम की शवल बदलने लगती. सबसे पहले नयको चाची आतीं. हाथ में खाली कटोरी और वही पुराना बहाना, ‘दीदी, जरा-सी चीनी कम पड़ गई थी.’ टीवी के पास टिंकू और बबलू ऐसे घुसते, जैसे सीट बुक कर रखी हो. थोड़ी देर बाद टुकड़ भैया आते. पसीने से तर, कंधे पर गमछा डोले, वे टीवी के सामने बैठ जाते. ‘आज तो गर्मी हद से ज्यादा है,’ कहते हुए ऐसे फैलते, मानो वह जगह उनकी पुरतैनी संपत्ति हो. देखते ही देखते

चित्रहार



हमारा सीना गर्व से फूल उठता. रविवार के कार्यक्रमों से लेकर रात के समाचार तक, वही टीवी हमारे समय की घड़ी था. लेकिन सप्ताह का सबसे खास क्षण था बुधवार की शाम का चित्रहार. बुधवार आते ही कस्बे की चाल बदल जाती. स्कूल से लौटते ही हम बस्ते घर में फेंककर गलियों में निकल पड़ते. चर्चा होती, ‘पिछली बार वाला गाना देखा था? आज जरूर नया गाना आएगा.’ कोई कहता, ‘मेरे मामा ने बताया है, अमिताभ की फिल्म का गाना दिखेगा.’ इन बातों में सच्चाई कम, उत्साह ज्यादा होता था. शाम ढलते ही घरों की रफ्तार तेज हो जाती. मां

कमरा भर जाता. बच्चे जमीन पर बैठते, कुर्सियों पर बुजुर्गों का कब्जा होता और खिड़की के पास देरी से पहुंचने वाले खड़े रहते. सात बजकर पैंतालीस मिनट होते-होते गपशप बंद हो जाती. सबकी निगाहें काली स्क्रीन पर टिक जातीं. दूरदर्शन का गोल लोगो घूमता और अमर धुन गुंजती, ‘तिन-तिन-तिन-तिनाक.’ दिल की धड़कनें तेज हो जातीं. कभी कार्यक्रम के बीच व्यथान आता और स्क्रीन पर संदेश उभरता, ‘रूकावट के लिए खेद है.’ हमारी मंडली में उसे उल्टा पढ़ने की होड़ लग जाती. जो सबसे पहले पढ़ता, कुछ ऐसा बोलता कि

पूरा कमरा हंसी से गुंज उठता. बाद में यह मजाक हम सबकी जुबान पर चढ़ गया. पहला गाना शुरू होते ही समय थम-सा जाता. ब्लैक एंड व्हाइट स्क्रीन पर भी हमें रंग दिखाई देते. हीरो की आंखों की चमक और हीरोइन की मुस्कान जीवंत लगती. बच्चे नाच की नकल करते, बुजुर्ग तालियां बजाते और नयकों चाची हर दूसरी नायिका की तुलना मधुबान से कर देतीं. कोई उन्हें सुधारता, तो हंसी छूट जाती.

फिर एक बुधवार ऐसा आया, जिसकी याद आज भी दिल को धड़कन तेज कर देती है. खबर फैल चुकी थी कि आज ‘खलनायक’ का नया गाना आएगा. स्कूल में पढ़ाई महज औपचारिकता बन गई थी. हर कोई उसी धुन को गुनगुना रहा था, जिसके बोल किसी को ठीक से याद नहीं थे. शाम होते-होते हमारे घर में इतनी भीड़ हो गई कि खड़े होने की जगह नहीं बची. सत्यनारायण भाई चोंटिल टांग के बावजूद पहुंच गए थे. सबकी आंखें उसी गाने के इंतजार में थींचित्रहार शुरू हुआ. पहला गाना आया, फिर दूसरा. तालियां बजती रहीं, लेकिन हर दिल उसी एक गाने के लिए धड़क रहा था. तभी उद्धाषिका ने अगले गाने का नाम लिया. उसी पल बल्ब झिलमिलाया. रोशनी कांपी और फिर अंधेरा छा गया. टीवी की स्क्रीन सिमटकर पतली रेखा बनी और बुझ गई.

कमरे में एक साथ कराह उठी. किसी ने गुस्से में गमछा पटक दिया, किसी की आंखों में आंसू आ गए. बच्चे रोने लगे. तभी बाहर से आवाज आई, ‘उसर वाली गली में बिजली है!’ सब दौड़ पड़े. गलियों में धूल उड़ रही थी, सांसें फूल रही थीं, लेकिन कदम नहीं रुक रहे थे. जन्नत के घर की खिड़की पर भारी भीड़ जमा थी. अंदर उनका रंगीन टीवी चमक रहा था. हम बाहर खड़े होकर खिड़की से झांकते हुए गाना देखने लगे. गाना शुरू हुआ, तालियां गुंज उठीं. उस पल न कोई अमीर था, न गरीब. सब एक परिवार थे. गाना खत्म हुआ, तो दिल भर आया. बिजली हमारे घर नहीं लौटी, लेकिन मन में उजाला रह गया.आज लगता है कि वह टीवी हमें सिर्फ मनोरंजन नहीं देता था, हमें जोड़ता भी था. वह सिखाता था कि खुशी बांटने से बढ़ती है.



और उपहार में देने के लिये कप? , बर्तन तथा सोने व चांदी के आभूषण भी तो लेना है. भाई हम तो अपने सास-ससुर को श्राद्ध उत्सव के जैसा मनाते हैं . दो ढाई सौ लोगों को खाना खिलाते हैं ,गरीबों को दान करते हैं . मंदिर में चढ़ावा देते हैं ,तभी तो हमारे पूर्वज खुश होते हैं, और हमें आशीर्वाद देते हैं. क्यों रानू हमने तो तुम्हें कभी सास-ससुर का श्राद्ध करते नहीं देखा ?अरे भाई !इतनी भी क्या कंजूसी है ?ये जो कुछ भी है...आखिर उन्हीं का तो दिया हुआ है. रानू के मुंह से तपाक से निकल गया. भाभी मैंने अपने सास ससुर को जीवित में ही तुम कर दिया था ,इसलिए उनका आशीर्ा तो सदा मेरे साथ है . रानू ने मन में सोचा कि तुमने तो अपने सास,ससुर के साथ बहुत अत्याचार किया है.. जीवित रहते हुए तो उन्हें एक- एक रोटी की मोहता? कर दिया था .उन्हें वृद्धाश्रम में छोड़ दिया था. एक लड़का होने के बाद भी उनका क्या हाल हुआ था? यह किसी से छुपा नहीं है?सासु माँ एक साड़ी के लिए तरस गई थीं,और तो और जिन्द रहते हुए तुमने उनका मुंह भी नहीं देखा था . श्रद्धा तो था नहीं,फिर अब दिखावा क्यों?

लघुकथा

श्राद्ध या दिखावा

मीनू ने रानू से कहा...रानू चलो बाजार चलते हैं. क्यों ? अरे! तुम्हें नहीं मालूम क्या? श्राद्ध पक्ष चल रहा है.

डेर सारी सब्जियाँ ,फल ,सूखे मेवे ,मिठाइयाँ,लाना है. और उपहार में देने के लिये कप? , बर्तन तथा सोने व चांदी के आभूषण भी तो लेना है. भाई हम तो अपने सास-ससुर को श्राद्ध उत्सव के जैसा मनाते हैं . दो ढाई सौ लोगों को खाना खिलाते हैं ,गरीबों को दान करते हैं . मंदिर में चढ़ावा देते हैं ,तभी तो हमारे पूर्वज खुश होते हैं, और हमें आशीर्वाद देते हैं. क्यों रानू हमने तो तुम्हें कभी सास-ससुर का श्राद्ध करते नहीं देखा ?अरे भाई !इतनी भी क्या कंजूसी है ?ये जो कुछ भी है...आखिर उन्हीं का तो दिया हुआ है.

रानू के मुंह से तपाक से निकल गया. भाभी मैंने अपने सास ससुर को जीवित में ही तुम कर दिया था ,इसलिए उनका आशीर्ा तो सदा मेरे साथ है . रानू ने मन में सोचा कि तुमने तो अपने सास,ससुर के साथ बहुत अत्याचार किया है.. जीवित रहते हुए तो उन्हें एक- एक रोटी की मोहता? कर दिया था .उन्हें वृद्धाश्रम में छोड़ दिया था. एक लड़का होने के बाद भी उनका क्या हाल हुआ था? यह किसी से छुपा नहीं है?सासु माँ एक साड़ी के लिए तरस गई थीं,और तो और जिन्द रहते हुए तुमने उनका मुंह भी नहीं देखा था . श्रद्धा तो था नहीं,फिर अब दिखावा क्यों?



साहित्य, समाज और समय के सवालों के बीच अंचल में एक सार्थक आयोजन

कोतमा साहित्य उत्सव में अंचल की संस्कृति और समकालीन साहित्य का संवाद



संतोष कुमार द्विवेदी

किसी साहित्यिक आयोजन की सार्थकता इस बात में है कि वह अपने समय, समाज और भूगोल से किस तरह संवाद करता है. कोतमा साहित्य उत्सव ने विंध्य अंचल की साहित्यिक-सांस्कृतिक स्मृतियों को समकालीन साहित्य के सवालों से जोड़ने का प्रयास किया. साहित्य, समाज, संस्कृति और बदलते समय की चुनौतियों पर केंद्रित इस उत्सव का आरंभ प्रख्यात कथाकार उदय प्रकाश के गांव सीतापुर में आत्मीय संवाद से हुआ. विभिन्न प्रदेशों से आए साहित्यकारों, कवियों, पत्रकारों और साहित्य प्रेमियों की उल्लेखनीय भागीदारी ने आयोजन को व्यापक स्वरूप दिया.

उद्घाटन सत्र में अन्नूपुर इकाई के सचिव डॉ. कुमार ध्रुव ने संचालन किया और अध्यक्ष अविनाश अग्रवाल ने स्वागत वक्तव्य दिया. पहले दिन रामराव वामनकर की अध्यक्षता में कहानी पाठ हुआ. इसमें कविता जी (प्रयागराज), मनीष वैद्य (देवास), पराग मांदले (भोपाल), सिनीवाली (नई दिल्ली), डॉ. निधि अग्रवाल (झांसी) और सोनाली पारे



(भोपाल) ने कहानियां पढ़ीं. वरिष्ठ कथाकार मनीष वैद्य के संचालन में यह सत्र पाठ से आगे बढ़कर श्रोताओं के साथ जीवंत संवाद में बदल गया.

दूसरे दिन मनेन्द्रगढ़ के निकट अमृतधारा जलप्रपात की यात्रा के बाद ओपन माइक सत्र आयोजित हुआ. इसकी अध्यक्षता जिला न्यायाधीश एवं शायर हिदायत उल्ला खान ने की, जबकि आलोचक डॉ. संतोष कुमार तिवारी ने रचनाओं पर समीक्षात्मक टिप्पणी की. कविता पाठ के अंतिम सत्र की अध्यक्षता वरिष्ठ नवगीतकार राम निहार तिवारी ने

की. इसमें शिव कुमार सिंह (कोतमा), डॉ. मुकेश कुमार (नई दिल्ली), राम नरेश ‘निष्ठुर’ (रीवा), डॉ. शिवशंकर मिश्र ‘सरस’ (सीधी), इंदु श्रीवास्तव (जबलपुर), दीपक जैन (गुना), विवेक चतुर्वेदी (जबलपुर), मनीष शर्मा (देवास), विभूति तिवारी (ब्यूहारी), कुंदन सिद्धार्थ (जबलपुर), शेफाली शर्मा (छिंदवाड़ा) और अलंकृति श्रीवास्तव (जबलपुर) ने रचना पाठ किया. गीत, नवगीत, गजल, नई कविता और हास्य-व्यंग्य की विविध प्रस्तुतियों को श्रोताओं ने उत्साह से सराहा. वैचारिक सत्र में उदय प्रकाश ने भारतीय

समाज की बहुलतापूर्ण परंपरा और सांस्कृतिक

नवभारत

भोपाल, रविवार, 4 अक्टूबर 2026

4

क्लास by बड़े भाई

सूरज की चाल सिखाती है जीना



संदीप द्विवेदी
कवि/प्रेरक वक्ता/स्किल ट्रेनर

छोटे भाई, सूरज जब अपनी लालिमा धरती पर बिखेरता है तो हमारा दिन हो जाता है और जब वो इसे समेटता है तो हमारे लिए रात हो जाती है. चंद्रमा हमारे लिए रात की रोशनी बनकर निकलती है लेकिन आज हम सूरज की चाल पर चर्चा करते हैं और जीवन के लिए कुछ संदेश लेते हैं.

छोटे भाई, सूरज का सुबह से शाम तक की यात्रा तो देखी ही है आपने.

पहली सीख सूरज के उदय और अस्त से ली जा सकती है.

सूरज अपने समय से कभी विचलित नहीं होता.

छोटे भाई, हमें भी उसकी तरह अपने समय का ध्यान रखना चाहिए. हर काम के लिए एक नियत समय हो.

दूसरी सीख, सूरज का बादलों से ढके होने से सीख ली जा सकती है.

छोटे भाई, सूरज को जब बदल ढक लेते हैं तो क्या सूरज ठहर जाता है, नहीं न... चुनौतियां आती हैं तो आने दीजिए, उनका सामना करते रहिए, रुक मत जाइए..

तीसरी सीख, सूरज के अस्त होने से ली जा सकती है.

छोटे भाई, सूरज पूरे उत्साह से उगता है फिर एक छोर से दूसरे छोर जाते हुए अस्त होता है. हम अस्त होते सूर्य को भी प्रणाम करते हैं.

छोटे भाई, आज हमारे पास समय है, क्षमता है, जीवन में कुछ बढ़ािया काम करें जिससे जीवन के अंतिम पड़ाव पर लोग आपको याद करें. आप पर गर्व करें. जे से कि सूरज पूरा दिन रोशनी बिखेरता है इसीलिए उसे लोग अस्त होते समय हाथ जोड़कर प्रणाम करते है.

तो छोटे भाई, हम सूरज से यह सीखें और अपना जीवन भी सूरज की तरह उज्वल बनाएं..

धन्यवाद.

कविता



मीनल द्विदास

युद्ध

जमीं पर खींची कुछ रेखाओं के लिए, मान-अपमान की बलि चढ़ते हैं.

युद्ध सिर्फ कुछ शब्दों का मेल नहीं, अकाल मृत्यु का तांडव ही होते हैं.

यह लड़े जाते हैं उन संपदाओं के लिए, जो मानवों को धरा का उपहार होती हैं.

युद्ध केवल दुष्टों का संहार नहीं, निरपराधों की मृत्यु का तांडव भी होते हैं.

धर्म में श्रेष्ठत्व सिद्ध करने के लिए, मानव मन पर अधिकार करते हैं.

शांति और प्रेम का संदेश नहीं, युद्ध मानवता का अवच्छेद करते हैं.

युद्ध केवल युद्ध नहीं, इस धरा का अपमान होते हैं!

ईश्वर-निर्मित संसार का काल होते हैं! हर नव-अंकुर के भविष्य का अंधकार होते हैं!

धरा का चेतन्य बस यही पूछता है... आखिर क्यों?

आखिर क्यों?...ये युद्ध होते हैं?

